E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
www.allstudyjournal.com
IJAAS 2021; 3(2): 145-147
Received: 01-02-2021
Accepted: 26-02-2021

डॉ. रंजना ग्रेवर
सह–आचार्य (संगीत)
सी.एम.के. नेशनल पी.जी. गर्ल्ज कॉलेज, सिरसा (हरि.), भारत

Corresponding Author:
डॉ. रंजना ग्रेवर
सह–आचार्य (संगीत)
सी.एम.के. नेशनल पी.जी. गर्ल्ज कॉलेज, सिरसा (हरि.), भारत

शिक्षण सम्बन्धी समस्याएं और सुझाव

डॉ. रंजना ग्रेवर

सारांश
संगीत शिक्षण मानव के हृदय में विभिन्न भावनाओं को अपने सौंदर्यात्मक तत्वों की पूर्णता के कारण भावों की अभिव्यंगना में सक्षम से शिक्षार्थी को कल्पना, चिंतन, मनन, अध्ययन अध्यात्मिक तथा जीवन के दार्शनिक पक्ष में अवलोकन के लिए प्रेरित कर उसका सर्वांगीण विकास के ऐतिहासिक अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है। प्राचीन काल जिसमें संगीत न केवल मानव मन को अध्यात्मिक पक्ष की ओर आकृषित किया था। भगवंत अराधना तथा मोक्ष प्राप्ति की संगीत की मुख्य लक्ष्य तथा उद्देश्य मध्यकालीन युग में, समय, वातावरण तथा परिस्थिति के परिवर्तन के साथ संगीत के लक्ष्य तथा उद्देश्यों में भी परिवर्तन आने लगा। संगीत राजाओं में राज दरबारों में उनको प्रसन्न करने के लिए अपने मधुर स्वरों से उनको आत्मविभोर करने लगा। लेकिन फिर भी भक्ति तथा भगवंत प्राप्ति जैसे उद्देश्यों को हुए बिना न रहा तथा उस युग की रचनाओं ने मानव की मलिनता को मिटा कर इसे पवित्र मानव बनाया।

मुख्यशब्दः शिक्षण, संगीत, अध्ययन, चिंताजनक, घराना

प्रस्तावना
पंडित भारतखंडे तथा विष्णु दिगम्बर पुलस्कर जी ने संगीत की जो व्यवस्था मध्य युग के अंतिम चरण में देखी वह निश्चय ही चिंताजनक थी। क्योंकि संगीत शिक्षण का क्षेत्र बहुत सीमित हो गया था। आपसी वैमनस्य, प्रतिस्पर्धा के कारण संगीत दूसरे घराना वाला पसन्द नहीं करता था तथा उसे निष्कृष्ट समझा जाता था। घरानों की गायकी एक परिवार की गायकी तथा संगीत जनसाधारण से बहुत दूरे गये। लेकिन पंडित जी के स्वरलिपि के योगदान में अनेकों समस्याओं को दूर किया तथा अनेक संस्थाओं के माध्यम से भारतीय संगीत के प्रसार तथा प्रचार कर संगीत को जन साधारण तथा पहुंचाने का प्रयत्न किया तथा संगीत को एक प्रतिष्ठा प्रदान की जो वह कुछ समय तक खो चुका था। उनके परिश्रम का परिणाम आज के युग में दृष्टिगोचर है। देश के अधिकतर विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में संगीत को अन्य विषयों के समान ऐच्छिक विषयों में स्थान प्राप्त है।
जहाँ तक प्रश्न है संगीत विषय के प्रचार तथा प्रसार का वह तो सरकार द्वारा किया जाता रहा है तथा सहयोग का जहां तक प्रश्न है वह भी काफी मात्रा में है। दूरदर्शन, रेडियो टेपरिकार्ड इत्यादि वैज्ञानिक उपकरण इसके प्रचार तथा प्रसार में अत्यधिक सहायक सिद्ध हुए हैं। लेकिन संगीत की परिपक्वता, संगीत के विकास संगीतिक ही संगीतात्मक सौंदर्य तथा संगीतज्ञ, कलाकार, संगीत शिक्षक बनने आदि की दृष्टि से यह शिक्षण पर कहां तक सफल मानी जा सकती है। अब खोजन यह है कि आधुनिक विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने में असफल हैं या शिक्षक के नैतिक मूल्यों तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व में कहीं दोष है या फिर शिक्षण प्रणाली ही पूर्णतः व्यवस्थित नही।
शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षार्थी तथा शिक्षक तथा शिक्षण प्रणाली तथा उसके अन्तर्गत आने वाले पाठ्यक्रम, सभी एक दूसरे के पूरक हैं। आधुनिक शिक्षार्थी, शिक्षक, शिक्षण प्रणाली से सम्भवतः कुछ कमी आ रही है। जिससे आधुनिक शिक्षार्थी अपने उद्देश्यों की पूर्ति में पूर्णतः सफल नहीं हो पा रहा है।
प्राचीन काल में प्रस्थापित गुरूकुलों के स्थान पर विभिन्न धाराओं तथा संगीतशालाओं का तदुपरान आधुनिक काल के घरानों का निर्माण हुआ। परन्तु आधुनिक काल में पाश्चात्य सभ्यता से प्रेरित विश्व विद्यमान व्यवस्था सामाजिक प्रतिष्ठा व शिक्षित सम्प्रदाय से संगीतकार की सम्बढ़ता की दृष्टि से महत्वपूर्ण कही जा सकती है परन्तु उसने निहित कुछ विकारों पर विचार करने से हम इस शिक्षण पद्धति को सुदृढ़ करने की सम्भावनाएं बढ़ सकती है। चयन विधि, प्रशासनिक व्यवस्था के अनुसार कक्षा में विद्यार्थियों की निर्धारित संख्या को प्रवेश ने होने पर प्रशासनिक अनुदान समाप्त कर दिये जाते हैं अथवा शिक्षण की संख्या में कमी करने का प्रावधान होने के कारण शिक्षक का भविष्य असुरक्षित हो जाता है। स्वाभाविक है कि शिक्षार्थियों का प्रवेश निर्धारित संख्या की पूर्ति की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो जाता है और इनकी व्यक्तिगत संगीतिक क्षमता और सामाजिक प्रतिभा गौण फलस्वरूप शिक्षकों जिसको कार्य सफलता शिक्षर्थियों के परिणामों पर आधारित रहती है। दुविधापूर्ण हो जाती

है। शिक्षण के लिए यह एक कठिन समस्या बन जाती है कि मूलभूत सौंदर्यात्मक तत्वों और स्वतंत्रात्मक लयात्मक प्रयोगों के परिपक्व स्तर तक शिक्षार्थियों को लाये। अतः संगीत विषय के पल केवल रागों और विद्याओं के सामान्य ज्ञान तक ही सीमित रह जाता है और अभ्यास परीक्षोन्मुख होने के कारण साधना की गरिमा को स्वीकार नहीं करता। इसलिए यह आवश्यक है कि संगीत विषय लेने की अनुमति दी जाये जो उचित संगीतिक प्रतिभाओं में संगीतिक कंठ धर्मता अथवा संस्कारित कंठ स्वर से सम्पन्न हो।

सामुहिक शिक्षण

क्या शिक्षण का स्वरूप सामूहिक होता है अर्थात् एक ही समय में शिक्षार्थी और शिक्षक भिन्न–भिन्न व्यक्तित्व प्राप्त और भिन्न भिन्न हठधर्मता से युक्त शिक्षार्थी को संगीत शिक्षा प्रदान करता है। अतः विद्यार्थी की वैयक्तिक क्षमता और प्रतिभा का पूर्ण लाभ उठाने में शिक्षक असमर्थ हरता है। निर्धारित समय सीमा का विशिष्ट महत्व रहता है जिसके कारण अंत समय में हर विद्यार्थी के गुणों को परखना और उसे संगीत के क्रियात्मक प्रयोगों का ज्ञान देना राग ताल की सूक्षमताओं से परिचित करवाना और सामूहिक प्रशिक्षण के बीच ही कभी–कभी विद्यार्थियों को पृथक पृथक रूप से प्रेरित करना शिक्षक के लिए अत्यंत कठिन हो जाता है। निश्चित अवधि में वाद्यों को स्वर में मिलाने का समय तो सम्मिलित है ही परन्तु इसके साथ–साथ विशिष्ट कठिनाई आधार स्वर की होती है। विद्यार्थियों के कंठ धर्मता के अनुसार आधार स्वर का ऊँचा–नीचा होना स्वाभाविक है। परन्तु सामूहिक प्रशिक्षण होने के कारण सब विद्यार्थियों के एक ही आधार स्वर से गाना अनिवार्य हो जाता है। उपरोक्त सभी कठिनाईयाँ संगीत के अपेक्षित सौन्दर्यात्मक तत्वों को पूर्णतः मुखारित प्रयोगात्मक स्तर पर शास्त्र को बढ़ाने के लिए दो घण्टे का समय दिया जाता है। सप्ताह हमें एक और एक सप्ताह में क्रियात्मक प्रशिक्षण में लगभग छः घण्टे का समय। इसी प्रकार स्नातकोत्तर स्तर पर एक प्रश्न पत्र के उद्देश्य से शास्त्र को पढ़ाने के लिए सप्ताह में चार घण्टे और क्रिया पक्ष की सम्पन्नता के लिए बाहर घण्टे का समय निर्धारित किया गया है। जिसमें स्नातक स्तर पर एक कक्षा में कम से कम पाँच राग और स्नातकोत्तर स्तर पर एक कक्षा में कम से कम 16 रागों को सिखाएजाने का प्रावधान है। यह सभी राग भिन्न–भिन्न थाटों या अंगों को ध्यान में रखकर निर्धारित किए जाते हैं। पाठ्यक्रम का यह निर्धारण विश्वविद्यालय द्वारा गठित एक समिति द्वारा किया जाता है। (ठवंतक वि जनकमपे) जिसे बाद है विश्वविद्यालय की एक उच्च समिति ।बंकमउपब ब्वनपदबपस द्वारा पारित किया जाता है। हाल ही में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा भी संगीतज्ञों के विशिश्ट पाठ्यक्रम सुनियोजित करके अनेक विश्वविद्यालय को इस उद्देश्य से प्रेरित किये गये है कि सभी विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम का स्तर एक समान हो सके। देखा जाये तो विश्वविद्यालय व्यवस्था में इस प्रकार का किया गया पाठ्यक्रम का निर्धारण संगीत शिक्षण पद्धति की सुचारूता को परिलक्षित करता है। लेकिन समयअवधि की अलप्ना और परीक्षा पद्धति सामूहिक शिक्षण के बीच पनपी समस्याएं पाठयक्रम को पूरी तरह नहीं होने देती। संगीत साधना के लिए जिस प्रारम्भिक चरण के रूप में जिस प्रकार स्वरों का ज्ञान, आवाज का लगाव, स्वर की परिपक्वता के लिजए आरोह तथा अवरोहात्मक अलंकारों एवं लप्टों का प्रयोग तथा समय की अवधि से परे अनवरत अभ्यास आदि की निर्धारित सीमा और समाजिक परिवेष की तीव्रता को प्रवाहमयता के बीच ही स्थान देना। शिक्षकों के लिये अनिवार्य हो गया है। फलतः यह सब क्रियायें के अपने प्रारम्भिक चरण तक ही सीमित रह जाती है।

पाठ्यक्रम की सीमा

आधुनिक शिक्षण प्रणाली पाठ्यक्रम का प्रावधान है जो इस दृष्टि से बनाया जाता है कि एक ओर विद्यार्थियों को संगीत के शास्त्रों वर्णित सामग्री के अन्तर्गत स्वर, लय, नाद, श्रुति, राग, थाट, वर्ण, अलंकार गमक आदि अनेकानेक सांगीतिक अलंकरणों तथा संगीतिक प्रयोग का ज्ञान हो, संगीत के अनेकानेक ग्रन्थी, संगीन के मनीषीयों, चित को, विद्वान विचार को तथा महान संगीतकारों के व्यक्तिव का ज्ञान, संगीत की अनेकानेक विधयों प्रकारों और रागों व तालों के सम्बन्ध में प्राप्ति अनेकाने के विचारों का ज्ञान हो तो दूसरी ओर संगीत के क्रियात्मक पक्ष की सुदृढ़ता को पूर्ण महत्व मिल सके। इसी दृष्टि से स्नातक स्तर पर पाठ्यक्रम में प्रत्येक कक्षा के लिये एक प्रश्न पत्र शास्त्र के तथा एक प्रश्न पत्र क्रियात्मक पक्ष से सम्बन्धित रखा जाता है। परन्तु प्रभावशाली बनने में अवरोध उत्पन्न कर देती है। यदि चयन पद्धति उचित हो विद्यार्थियों के निश्चित संख्या के अनुपात में शिक्षकों की नियुक्ति की जाये तो संगीत साधना और अभ्यास के लिये उचित वातावरण और परिवेश प्रदान किया जाये पाठ्यक्रम की संपूर्णता में प्रयुक्त वैज्ञानिक उपादानों को जुटाने के लिए पर्याप्त मात्रा में अनुदान दिये जाये तो सम्भव है कि यही पाठ्यक्रम संगीत शिक्षार्थी को परिपम्व बनाने में समर्थ सिद्ध हो सकता है।

इनके अभाव में पाठ्यक्रम में निहित राग, ताल तथा विद्यायों आदि का ज्ञान केवल राग के स्वरूपों कुछ आलाप, तान, ताल के ठेकों के ज्ञान और ध्रुपद्र, धमरा आदि केवल बाह्य स्वरूप के ज्ञानी तक ही सीमित रह जाते हैं। स्नातकोत्तर स्तर के पश्चात् यद्यपि प्रतिभावान शिक्षार्थी राग को आलाप, तान तथा समस्त संगीतिक अलंकरणों के साथ गाने में सक्षम हो जाता है परन्तु फिर भी संगीत शिक्षण पद्धति में अत्याधिक एवं मनोविज्ञानिक प्रयोगों के लिये समय अभाव के कारण शिक्षार्थी में राग चिंतन का भाव उतना प्रबल नहीं हो पाता है। स्पष्ट है कि इसे शिक्षण पद्धति का दोष व मानकर व्यवस्था का ही दोष मानना होगा क्योंकि स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् शिक्षार्थी एक शिक्षक बनने का अधिकारी समझा जाता है पुनः वह शिक्षार्थी शिक्षक के रूप में संगीत के साधनात्मक पक्ष से परिपूर्ण न होने के कारण तथा शिक्षण पद्धति में विशिश्ट प्रशिक्षण प्राप्त न करने के कारण शिक्षा मनोविज्ञान से अपरिचित रह जाने के फलस्वरूप एक फलस्वरूप एक सफल शिक्षक नहीं बन पाता। इसी प्रकार कला के क्षेत्र में पूर्ण कलाकार भी नहीं बन पाता। अतः शिक्षण पद्धतियों को दोषपूर्ण न मानकर यह सोचना आवश्यक है कि इसी शिक्षण प्रणाली में संगीत का सामान्य ज्ञान प्राप्त करने के बाद अलग दिशाओं में विशिष्ट प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाये।

परीक्षा पद्धति

आधुनिक समय में संगीत शिक्षण पद्धति में निहित परीक्षा पद्धति यद्यपि विवेक पूर्ण है जिसमें शास्त्र पक्ष की परीक्षा के लिये लिखित परीक्षा की व्यवस्था की जाती है और क्रियात्मक परीक्षा के लिये किसी अन्य विश्वविद्यालय या संस्था से परीक्षकों की नियुक्ति की जाती है। सैद्धान्तिक रूप से यह व्यवस्था अपने आप में सही है। विश्वविद्यालीय व्यवस्था जब प्रारम्भ हुई स्वतन्त्रता के पश्चात् के विश्वविद्यालयों में नियुक्त होने वाले शिक्षक अधिकांशतः वही थे जिन्होनें घराना परम्परा की शिक्षण पद्धति पर आधारित संस्थाओं से शिक्षा प्राप्त की थी। स्वाभाविक है कि ऐसे शिक्षकों का संगीत का क्रियात्मक पक्ष अत्यंत सुदृढ़ तथा उच्च कोटि का था। अतः विश्वविद्यालय शिक्षण व्यवस्था में ऐसे संगीतकारों की नियुक्ति के कारण विश्वविद्यालय से उपाधि प्राप्त शिक्षक व शिष्य भी संगीतात्मक स्वर काफी अच्छी था और विश्वविद्यालयीन व्यवस्था में अन्य विषयों के साथ संगीता के शास्त्र का ज्ञान के कारण वह शिक्षार्थी को शास्त्र का भी अधिकार प्राप्त करने में समर्थ सिद्ध हो सके। उसमें परीक्षक भी

परीक्षा के समय रागों के स्वरूप की सूक्ष्मता, परीक्षार्थी के स्वर लगाव, राग की अवधारणा, राग और ताल की सामंजस्य तब सामर्थ तथा परीक्षार्थी की चिंतन क्षमता को दिशा महत्व देते थे। परन्तु धीरे–धीरे घरानों का प्रभाव कम हो जाने से (जिसमें शास्त्र ज्ञान तथा सामान्य ज्ञान का अभाव था) तथा विश्व विद्यालयीय व्यवस्था से उपाधि प्रापत शिक्षार्थियों की शिक्षक के रूप में नियुक्ति किये जाने की प्रक्रिया के कारण उत्त्रोत्तर संगीत के साधनात्मक पक्ष में प्रबलता आती गई। स्वतन्त्रता प्राप्ति के चार दशक के पश्चात् अब यह अनुभव किया जाना लगा है कि संगीत शिक्षण को ऐसी रूपरेखा तैयार की जाये कि जिससे विशिष्ट प्रशिक्षण की दृष्टि से संगीत के क्रिया और शास्त्र, संगीत और शास्त्र संगीत और मनोविज्ञान, संगीत और विज्ञान, संगीत और आध्यात्मक, संगीत और भौतिकी, संगीत और समाजशास्त्र, संगीत की अनेकानेक अनुसंधानात्मक विशिष्ट प्रयोगों की व्यवस्था हो और आधुनिक शिक्षण पद्धति में निहित परीक्षा पद्धति केवल राग, ताल के स्कूल ज्ञान के आधार पर प्रदान अंकों तक ही सीमित न रह जाये अपितु यह पद्धति संगीत के विशिष्ट लक्ष्य को सामने रखकर विशिष्ट दिशा में लिये गये। प्रयासों एवं प्राप्त प्रशिक्षण के सही मूल्यांकनयुक्त है, तथा इसे सुचारूप से क्रियान्वित करने के प्रयासों के साथ परीक्षा पद्धति को और अधिक सुदृढ़ किया जाना चाहिए।

संगीत शिक्षा यह पद्धति एक अनवरत तथा वाले चक्र के समान है जिसके दो पहिये है। शिक्षक और शिक्षार्थी है और शिक्षार्थी ही भावी शिक्षक होता है अतः शिक्षक का योग्य होना संगीत के सूक्ष्म तत्वों के परिचित होना, व्यवहार सुचारू होना, आशावादी होना और साथ ही साथ संगीत के जिस पक्ष में भी इसकी रूचि में उस पक्ष में अत्यंत आवश्यक माना जा सकता है।

उपरोक्त प्रमुख समस्याओं के अनिश्चित कुछ ऐसी समस्याएं है जिनका संक्षिप्त करना ही सम्भवतः पर्याप्त होगा, उदाहरणस्वरूप शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच श्रृद्धा का अभाव होना, शिक्षार्थी में संगीत को आत्मसात करने की अपेक्षा उपाधि प्राप्त करने की इच्छा को प्रबल मानकर बंदिशों का आधार मान लेना, संगीत के प्रति आसक्ति न होना, स्वर के लगाव, स्वर सौंदर्य, भावात्मकता और संगीत व माधुर्य तथा लालितय से अपरिचित रह जाना, संगीत को व्यवसायिक दृष्टि से अपनाना इत्यादि मुख्य कारण हैं। परन्तु समाज कल्याण या संगीत के माध्यम से संगीत के नैतिक उत्कर्ष को विशिष्ट महत्व देना संगीत शिक्षा के सरलीकरण के प्रयासों से संगीत की भूमिका को बेहतर बनाया जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग, निबंध संगीत
2. डॉ. सत्याभार्गव, राष्ट्रीय एकता में संगीत की भूमिका
3. डॉ. कमलेश सक्सेना, संगीत निकुंज
4. डॉ. रमाकांत द्विवेदी, शास्त्रीय गायन का ध्वनांतिक अध्ययन